

हिन्दी काव्य रचना में प्रकृति-चित्रण

भरवाड पोपटभाई बी.

उत्तर बुनियादी कन्या विधालय, चोटीला

प्रकृति और मानव का सम्बंध उतना ही पुराना है, जितना कि सृष्टि के उद्भव और विकास का इतिहास प्राचीन है। प्रकृति-माँ की गोद में ही प्रथम मानव शिशु ने आँखें खोली थीं, उसी की कोड में खेलकर वह बड़ा हुआ और अन्त में उसी के आलिंगन में आबद्ध होकर वह चिर-निद्रा में सोता रहा। प्रकृति के उद्भव क्रियाकलापों से उसकी हृदयअवस्था भावनाओं, भय, विस्मय, प्रेम आदि-का स्फुरण हुआ; उसी की नियमितता को देखकर उसके मस्तिष्क में ज्ञान-विज्ञान की बुद्धि का विकास हुआ। दार्शनिक दृष्टि से भी प्रकृति और मानव का संबंध स्थायी है, चिरन्तन है। सत् रूपी प्रकृति, चित्-रूपी जीव और आनन्द-रूपी परम-तत्त्व तीनों ही मिलकर सच्चिदानन्द परमेश्वर की सत्ता का रूप धारण करते हैं। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक, तीनों ही दृष्टियों से प्रकृति मानव का पोषण करती हुई उसे जीवन में आगे बढ़ाती है।

मानव और प्रकृति के इस अटूट सम्बंध की अभिव्यक्ति धर्म, दर्शन, साहित्य और कला में चिरकाल से होती रही है। साहित्य मानव का प्रतिबिम्ब है, अतः उस प्रतिबिम्ब में उसकी सहचरी प्रकृति का प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक है। इतना ही नहीं, प्रकृति मानव हृदय और काव्य के बीच संयोजक का कार्य भी करती रही है। न जाने हमारे कितने ही कवियों को अब तक प्रकृति से काव्य-रचना की प्रेरणा मिलती रही है। आदिकवि ने प्रकृति के दो सजीव प्राणियों में से एक का वध देखकर इतने आँसू बहाये कि उनसे कितने ही भूर्जपत्र गीले हो गये और वे आज भी गीले हैं। आषाढ के प्रथम बादलों को देखकर कवि-कुल शिरोमणि कालिदास तो इतने भावाभिभूत हो गये कि उनकी अनुभूतियाँ गाथा सुनाने के लिए प्रकृति की ओट बार-बार ली है। आधुनिक कवियों में भी अनेक कवियों को काव्य-रचना की प्रेरणा प्रकृति से मिली है। प्रकृति हमारे कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत ही नहीं, सौन्दर्य का अक्षय भंडार, कल्पना का अद्भूत लोक, अनुभूति का अगाध सागर, विचारों की अटूट शृंखला भी रही है।

प्रकृति-चित्रण के प्रकार

काव्य में प्रकृति का प्रयोग कई प्रकार से किया जाता है। हिन्दी के एक विद्वान ने इसके निम्नांकित ११ भेद गिनाये हैं - (१) आलम्बन रूप में, (२) मानवीकरण के रूप में, (३) पृष्ठभूमि के रूप में, (४) प्रतीकात्मक रूप में, (६) विम्ब प्रतिबिम्ब रूप में, (७) उपदेशिका के रूप में, (८) अलंकार दर्शन के रूप में, (९) दूतिका के रूप में, (१०) रहस्यात्मक रूप में, (११) मानवीकरण के रूप में। ऐसा प्रतीत होता है कि यह परिगणन केवल संख्या विस्तार के निमित्त ही किया गया है। 'पृष्ठभूमि के रूप में जिसके अन्तर्गत प्रकृति कहीं अनुकूल बनकर आती है और कहीं प्रतिकूल'-इसमें और 'उद्दीपन रूप में' कोई अन्तर नहीं है। इसी प्रकार 'दूतिका' का रूप भी मानवीकरण में समाविष्ट हो जाता है। मानवीकरण को भी दो बार गिना दिया जाता है। वस्तुतः उपर्युक्त भेदों का समाहार निम्नांकित में ही हो जाता है-

१. **आलम्बन रूप** - जहाँ कवि स्वतंत्र रूप से प्रकृति का चित्रण केवल प्रकृति-वर्णन के उद्देश्य से ही कर रहा हो, वह आलम्बन रूप कहलाता है।

२. **उद्दीपन रूप** - जहाँ कवि के मूल-भाव का आलम्बन तो कोई और होता है, किन्तु प्रकृति से वातावरण के द्वारा उस भाव को उत्तेजित करने में सहायता ली जाती है, उसे उद्दीपन रूप कहते हैं। जैसे चाँदनी रात के प्रभाव से विरहिणियों की वियोग वेदना का बढ जाना दिखाया जाता है।

३. **उपमान रूप** - मूल विषय को स्पष्ट करने के लिए कविगण प्रकृति के उपादानों से उनका सादृश्य या वैषम्य प्रदर्शित करते हैं, जैसे 'उसका मुख चन्द्र-सा है।' यहाँ चंद्र उपमान रूप में प्रयुक्त हुआ है। विभिन्न अलंकारों में इन उपमानों का प्रयोग कई प्रकार से होता है, अतः उसके अनुसार उपमान रूप के भी अनेक रूपभेद किये जा सकते हैं, जैसे-उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्युति आदि।

४. **मानवीकरण रूप** - जहाँ प्रकृति को सजीव रूप में उपस्थित करते हुए उसे मानवी रूप प्रदान कर दिया जाता है, उसे ही मानवीकरण रूप कहते हैं, जैसे- चाँदनी को लक्ष्य करके कहना- 'हे शुभ-वसना ! तुम किसे देखकर मुस्कुरा रही हो ?' वस्तुतः मानवीकरण रूपकातिशयोक्तिक का ही एक भेद है।

५. **प्रतीक रूप** - कवि अपने भावों को स्पष्ट रूप में न बताकर उन्हें प्रतीकों के माध्यम से व्यंजित करता है, जैसे- 'निराशा' के लिए 'अन्धकार' का, दुःख के लिए 'रात्रि' का, सुख के लिए 'दिन' का प्रयोग।

६. **अन्योक्तिक या व्यंग्योक्तिक के रूप में** - कई बार कविता में किसी विचार को प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त न करके प्रकृति के क्रिया-कलापों के माध्यम से ध्वनित किया जाता है। जैसे-

''माली आवत देखि के कलियाँ करें पुकार ।

फूले-फूले चुनि लिये कालि हमारी बार ॥

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल ।

अली कली ही सौँ बैँध्यो, आगे कौनु हवाल ।''^(१)

सामान्य रूप से उपर्युक्त छह भेद ही प्रचलित हैं, किन्तु जैसे हमारे काव्यशास्त्र में जितने अर्थालंकार हैं, प्रायः सभी में प्रतीक का प्रयोग हो सकता है।

भारतीय काव्य में प्रकृति-चित्रण

विश्व के प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य-ऋग्वेद-से ही हमें प्रकृति-चित्रण की सुदृढ परम्परा प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ में उषा, सूर्य, मरुत, इन्द्र आदि को अलौकिक शक्तियों के रूप में स्वीकार करते हुए, उनके मानवीय क्रिया-कलापों का चित्रण किया गया है। उषा की कल्पना एक कुमारी बाला के रूप में करते हुए सूर्य को उसका प्रेमी बताया गया है- 'हे प्रकाशवती उषा ! तुम कमनीय कन्या की भाँति अत्यन्त आकर्षणमयी बनकर अपने प्रियतम सूर्य के निकट जाती हो तथा उसके सम्मुख स्मित-वेदना युवती की भाँति अपने वक्ष-प्रदेश को निरावृत्त करती हो। इसी प्रकार पुरुरवा को छोड़कर जाती हुई कान्तिमयी उर्वशी के सौन्दर्य को भी मेघों को चीरकर जाती हुई बिजली की तरह बताया गया है। मंडूक सूक्त में वर्षा के आगमन और मेढकों पर उनके आह्लादककारी प्रभाव का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है- 'जल की बूँदों से प्रसन्न होकर क्रीडा-मग्न मेढक एक-दूसरे को बधाई-सी देते प्रतीत होते हैं। वर्षा हो जाने पर चितकबरे रंग वाला मेढक पीले मेढक के साथ उछल-उछलकर उसके स्वर में मिलता है।' एक मेढक दूसरे मेढक की टर्राहट को इस प्रकार दोहराता है जैसे गुरु के शब्दों को शिष्य दोहराता है। कहना न होगा कि इन पंक्तियों में वैदिक ऋषि के प्रकृति से निकट सम्बंध की व्यंजना सम्यक् रूप में हुई है।

आदिकवि-वाल्मीकि-प्रकृति के रोमांचकारी प्रभाव से पूर्णतः परिचित थे। मानवीय भावनाओं के उद्दीपन के लिए उन्होंने स्थान-स्थान पर प्रकृति का आश्रय ग्रहण कर लिया है। बालकाण्ड में कौशिक ऋषि के संयम को भंग करने की योजना बनाता हुआ इन्द्र रंभा से कहता है -

मा भैषी रम्भे मदं ते कुरूष्व मम शासनम् ।

कोकिल हृदयग्राही माधवे रूधिर द्रुमे ।

अहं कन्दर्प सहितः स्थास्यामि तव पार्श्वतः ।

त्वं हि रूपं । बहुगुणं कृत्वा परमं भास्वरम् ।

तमूर्ध्नि कौशिकं भद्रं भेदयस्व तपस्विनम् ।

अर्थात् हे रम्भे ! डरो मत ! तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा, मेरी आज्ञा मानो। वसन्त काल में किसी मनोहर वृक्ष पर सुन्दर कोकिल बनकर कामदेव के साथ मैं तुम्हारे निकट ही स्थित होऊँगा। तुम जरा अपने रूप को सजाकर तपस्वी के मन को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करना।

उद्दीपन के अतिरिक्त रूप-सौन्दर्य की साज-सज्जा (अलंकार) के रूप में भी प्रकृति का प्रयोग वाल्मीकि रामायण में हुआ है। राजा कुशनाभ की युवती कन्याओं के सौन्दर्य को प्राकृतिक वैभव से सम्पन्न करते हुए लिखा गया है, रूप-यौवन-सम्पन्न वे कन्याएँ अलंकृत होकर उपवन में गईं। वर्षा-काल की विधुत के समान वे प्रतीत होती थीं।...अपने अपूर्व रूप से सजी हुई। वे सर्वांग सुन्दरियाँ वाटिका में आकर ऐसी प्रतीत होती थीं, मानों मेघ से छिपी हुई तारिकाएँ हों।

महाभारत में आकर प्रकृति की अनुपम सौन्दर्य में और भी अधिक अभिवृद्धि हुई है। इसके शकुन्तलोपाख्यान में कण्व-ऋषि के आश्रम का एक संश्लिष्टचित्रण द्रष्टव्य है - "वह वन पुष्पों से युक्त और वृक्षों से सुशोभित था। उसमें अत्यन्त सुखकारी हरी-हरी घास लहरा रही थी। अनेक सुन्दर पक्षियों के कलरव तथा कोयलों की कूक और झिल्ली की झंकार से वह गुजरित हो रहा था।" इसी प्रकार उपमान रूप में वर्णन का एक उदाहरण देखिए-अदभूत सौन्दर्य भार से लदी हुई बाला सुन्दरी तप्ता के रूप-वैभव की व्यंजना करते हुए महाभारतकार ने लिखा है- 'वह या तो लक्ष्मी है अथवा सूर्य से झडकर पडी हुई उसकी कान्ति है : अंगों की धृति की दृष्टि से वह रवि की शिखा-तुल्य और निर्मल सौन्दर्य की दृष्टि से चन्द्रेखातुल्य प्रतीत होती है। पर्वत-प्रदेश पर स्थित यह श्याम-वर्ण नेत्रों वाली कन्या स्वर्ण की प्रतिमातुल्य प्रतीत होती है।'

परवर्ती संस्कृत साहित्य में तो प्रकृति का चित्रण इतनी मात्रा में हुआ है कि हमें सर्वत्र प्रकृति-सौन्दर्य की ही माया का प्रसार दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति-चित्रण का कोई ऐसा रूप नहीं, जो संस्कृत के काव्य-भण्डार में उपलब्ध नहीं होता। प्रायः आधुनिक आलोचक मानवीकरण की शैली को पाश्चात्य साहित्य की देन बताते हैं, किन्तु कालिदास, दंडी और हर्ष की रचनाओं में प्रकृति के मानवीय रूप के शत-शत उदाहरण ढूँढे जा सकते हैं। 'मेघदूत' में गंभीर नदी को किसी मद-विह्वला नारी के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसकी काम-चेष्टाओं का निरूपण किया गया है, जो मानवीकरण का उत्कृष्ट उदाहरण है। 'ऋतुसंहार' में शरद का चित्रण एक नववधू के रूप में किया गया है- 'काश के(श्वेत) वस्त्रों से सुसज्जित, परिपक्व धानों से ललित छरहरे शरीर वाली खिले हुए कमल मुखवाली यह शरद सुन्दरी, नूपुर ध्वनि के तुल्य मदोन्मत्त हंसों के कलरव का शब्द करती हुई किसी नव वधू के समान आ रही है।' आगे चलकर भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि कवियों ने प्रकृति का चित्रण इतने परिमाण में किया कि यह महाकाव्य के एक आवश्यक लक्षण के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। 'कादम्बरी' और 'दशकुमारचरित' जैसी गंध रचनाएँ भी प्रकृति-सौन्दर्य से भरपूर हैं। प्राकृत और अपभ्रंश के जैन कवियों ने प्रकृति-वर्णन का चित्रण पर्याप्त मात्रा में किया है, किन्तु उनमें संस्कृत कवियों की ही उक्तियों का पिष्टपेषण अधिक है, मौलिकता कम है, हाँ अपभ्रंश के परवर्ती युग में अब्दुलरहमान एवं बब्बर जैसे कवियों ने उद्दीपन रूप में प्रकृति के कई चित्र उपस्थित किए हैं। विभिन्न ऋतुओं में 'सन्देशरासक' की विरहिणी नायिका की दशा अत्यन्त असह्य हो जाती है। पथिक को सन्देश देती हुई वह कहती है कि-(वर्षा ऋतु में) अम्बर में चारों ओर काले बादल छाये हुए हैं। काली घटाओं की घरघराहट जोर से उठती है। नभ-मार्ग में विधुत तडकती है। मेढकों की कठोर टर्राहट सहन नहीं हो पाती। धरती पर निरन्तर मूसलाधार वर्षा होती रहती है। पथिक ! बताओ, शिखर-स्थित कोयल के मीठे स्वर की चोट को कैसे सहन करूँ !!' दूसरी ओर महाकवि बब्बर की पति-वियुक्ता नायिका ग्रीष्म के दाह से क्षुब्ध होकर किसी के शीतल-स्पर्श की कामना व्यक्त करती है-

"तरुण तरुणि तवइ धरणि, पवण वटइ खरा,

लग्ग जाहि जल वड मरूथल, जण-जियण-हरा ।

दिसइ चलइ हिअअ दुलइ हम, इकलि बहू,

धर णहि अपि सुणहि पहिअ ! मण इछइ कहू !"(^२)

सूर्य धरती को तपा रहा है। तेज पवन चल रहा है। इस मरूस्थल में कहीं जल का पता नहीं है। लोगों का जीवन नष्ट हो रहा है। दिशाओं की वायु चल रही है। उनसे मेरा हृदय डुल रहा है। घर में पिया नहीं है और मैं अकेली वधू हूँ। हे पथिक ! मन किसी को चाहता है !

उपर्युक्त पर्यवेक्षण से स्पष्टता होती है कि वैदिक युग से लेकर अपभ्रंश युग तक के साहित्य में प्रकृति रानी की सत्ता अखंड रूप से बनी हुई है। वह नाना रूपों में अवतरित होकर मानवीय अनुभूतियों के साथ अभिनय करती रहीं है। कहीं वह सौन्दर्य की सहायिका और साधिका रूप में दृष्टिगोचर होती है तो कहीं स्वयं ही सौन्दर्य का आगार बन गयी है। दार्शनिकों ने इस प्रकृति को माया की संज्ञा देकर उचित किया है।

हिन्दी काव्य में प्रकृति

हिन्दी के प्रारम्भिक काव्य में प्रकृति का चित्रण प्रायः उद्दीपन और अपमान रूप में हुआ है। रासो ग्रन्थों के रचयिताओं ने जहाँ सौन्दर्य निरूपण के लिए प्रकृति से उपमान ग्रहण किए हैं, वहाँ संयोग-वियोग की अनुभूतियों के उद्दीपन के रूप में विभिन्न ऋतुओं का वर्णन भी किया है। 'बीसलदेव रासो' की नायिका की विह्वल भावों की झड्डियों से और भी प्रदीप्त हो उठती है-

भादवठ बरसई छइ मगहर गम्भीर । जल-थल महीयल सहू भर्या नीर ।
जाणे सरवर उलटइ । एक अंधारी बीजखी बाया ।
सूनी सेज विदेश पिया । दोई दुख नाल्ह क्युं सइहणा जाई ।

एक दुःख हो सहन किया जा सकता है, किन्तु प्रकृति के मादक वैभव ने तो विरहणी बाला के शोक-संताप को द्विगुणित कर दिया है। मैथिल-कोकिल विधापति ने तो प्रकृति-सौन्दर्य को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत किया है। नारी के रूप-वैभव को प्रकृति के अंगराग से सुसज्जित करने की कला में जैसी दक्षता विधापति को प्राप्त है, वैसी संभवतः किसी अन्य कवि को प्राप्त नहीं हुई। वे विभिन्न प्रकृति को विभिन्न अलंकारों के रूप में प्रयुक्त करते हैं-

पीन पयोधर दूबरि गता, मेरू उपजल कनक-लता
सुन्दर वदन चारू अरू लोचन, काजर रंजति भेला !
कनक-कमल माझ काल भुजंगिनी, श्री युत खंजन खेला !

इसी प्रकार प्रकृति-प्रयोग के अन्य प्रकार भी देखिए-

उद्दीपन रूप में-

फुटल कुसुम नव कुंज कुटीर बन, कोकिल पंचम गावे रे !
मलयानिल हिम सिखर सिधारल, पिया निज देश न आवे रे !

अन्योत्किक रूप में-

कंटक माझ कुसुम परगास, भमर विकल नहीं आवे पास ।
भमरा मेल धुरए रब राम, तोहे बिबु मालति नहीं बिसराम ॥
इसके अतिरिक्त मानवीकरण का भी विधापति में अभाव नहीं है। उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए-

माइ हे सीत वसंत बिबाद, कओन बिचारब जय अवसाद !
दुहु दिसि मधथ दिवाकर भेल, दुजबर कोकिल साखी देल !!
बादी तह प्रतिवादी भीत !
सिसिर बिन्दु ही अन्तर सीत !!

साधनाजन्य अनुभूतियों के प्रकाश के लिए भी प्रकृति की लीला से बढकर और कोई रूपक कबीर को दृष्टिगोचर नहीं होता-

अंतर कँवल प्रकासिया, ब्रह्मन वास तहँ होइ ।
मन भँवरा तहाँ लुबुधिया, जागैगा जन कोइ ॥

यहाँ बसन्त और शीत को क्रमशः वादी और प्रतिवादी के रूप में उपस्थित किया है तथा अन्त में बसन्त की जीत दिखाई गयी है। प्रकृति की माया समझने वाले संत और भक्त कवियों ने भी उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कबीर ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति को माध्यम बनाया है-

जैसे जलहि तरंग तरंगिनी ऐसे हम दिखलावहिंगे ।
कहै कबीर सुख सागर हँसहि हँसहि हंस मिलावहिंगे ॥

संसार की नश्वरता का प्रतिपादन भी वे अन्योक्तियों के द्वारा करते हैं-

महाकवि जायसी ने प्रकृति को उद्दीपन, उपमान, प्रतीक आदि रूपों में प्रयुक्त किया है। पावस ऋतु के मादक प्रभाव की व्यंजना द्रष्टव्य है-

“रितु पावस बरसै, पिठ पावा । सावन भादौ अधिक सोहावा ॥
कोकिल बैन, पति बग छूटी । धनि निसरी जेठ बीर बहूटी ॥
चमकै बिज्जु, बरिस जग सोना । दादुर मोर सबद सुठि लोना ॥
रंगराती, पिय संग निस जागै । गरजै चमकै चौक कंठ लागे ॥
सीतल बूँद, ऊँच चौबारा । हरियर सब देखिय संसारा ॥
भर भादौ दूभर अति भारी । कैसे भरौ रैन अँधियारी ॥
मंदिर सून प्रिय अनतै बसा । सेज नाग धै धै डसा ॥”⁽⁸⁾

इसी प्रकार रानी पद्मिनी के सौन्दर्य-चित्रण में प्रकृति के उपादानों का प्रयोग भरपूर किया गया है-

प्रेम-निरूपण में भी जायसी ने प्रकृति के क्रिया-कलापों को सादृश्य-रूप में प्रस्तुत किया है-

कहना न होगा कि यहाँ प्रेमी के लिए 'मधुकर' और 'पक्षी' का रूपक भावनाओं के उत्कर्ष में गहरा योग देता है। भक्ति-काल के अन्य कवियों ने भी भावाभिव्यक्ति के लिए प्रकृति के वैभव को साधन रूप में स्वीकार किया है। तुलसी ने इष्टदेव की साज-सज्जा में प्रचलित उपमानों की झडी बार-बार लगाई है तथा वियोगी राम पर वर्षा, शरद् आदि का प्रभाव भी यथास्थान अंकित किया है। कृष्ण भक्त कवियों के आराध्य देव की तो क्रीडास्थली ही प्रकृति की रंगभूमि थी, अतः उनके काव्य में इसकी छवि सर्वत्र दृष्टिगोचर हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यहाँ हम 'सूर-सागर' से कुछ पंक्तियाँ ही उद्धृत करके संतोष लेंगे-

“केकी-कोक, कपोत और खग, करत कुलाहल भारी !
मानहुँ लै-लै नाउं परस्पर, देत दिवावत गारी !!
कुंज-कुंज प्रति कोकिल कूजति, अति रस विमल बढी !
मनु कुल-बधु निलय भई गृह-गृह गावति अटनि चढी !
प्रफुलित लता जहाँ जहँ देखत तहाँ-तहाँ अलि जात !
मानहुँ बिट सबहिनि अवलोकत, पारस गनिका गात !”⁽⁹⁾

यहाँ सामूहिक गाली-गलौज के साथ युवतियों के निर्लज्ज आलाप और रसिकों की छेड़-छाड़ का आयोजन प्रकृति की ओट में किया गया है, कवि ने दृश्य को मादक बनाते हुए भी उसे अश्लीलता से बचा लिया है।

रीतिकालीन काव्य में प्रकृति-चित्रण

रीतिकाल का प्रमुख विषय शृंगार-चित्रण होने के कारण इस युग में प्रकृति-चित्रण को और भी अधिक प्रश्रय मिलना स्वाभाविक है। बिहारी, सेनापति, देव पद्याकर आदि कवियों ने प्रकृति को अनेक प्रकार से चित्रित किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है-

“लपटी पहुप पराग-पट सनी स्वेद मकरन्द ।
आवति नारि नवोढ लौं, सुखद वायुगति मन्द ।
सधन कुंज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर ।
मन है, जात अजौ है, वा जमना के तीर ।”^(५)

“भौरन को गुंजन बिहार बन कुंजन में, मंजुल मलारन को गाबनो लगत है ।

कहै ‘पद्याकर’ गुमान हूँ प्राण हूँ तें प्यारों मन-भावनो लगत है ।

मोरन को सोर धन-धोर चहुँ ओरन, हिंडोरन को वृन्द छवि छावनी लगत है ।

नेह सरसावन में मेह बरसावन में, सावन में झूलिबो सुहावनो लगत है ।” - पद्याकर

इसी प्रकार ‘गवाल’ कवि का वसन्त वर्णन देखिए-

“सरसी के खेत की बिछायत बनी तामें खरी चाँदनी बसन्ती रति कंत की ।

सोने के पलंग पर वसन वसन्ती साज, सोन जूहि माला हालें हिया हुलसन्त की ।

राग में बसन्त बाग-बाग में फूलो, त्याग में बसन्त क्या बहार है बसन्त की ।” - गवालकवि

यहाँ प्रकृति-वर्णन-या ऋतु-वर्णन किया गया है, किन्तु स्वाभाविकता का विशेष ध्यान नहीं रखा गया। सोचिए, सरसों के खेत में सोने का पलंग कहाँ से आवेगा ?

आधुनिक युगीन काव्य में प्रकृति-चित्रण

आधुनिक युगीन हिन्दी-काव्य में प्रकृति की छटा का चित्रण पर्याप्त सूक्ष्मता, सरसता एवं विशदता से हुआ है। विशेषतः छायावादी काव्य तो प्रकृति के वैभव में इतना अधिक रंजित है कि कुछ विद्वानों ने प्रकृति-वर्णन के विशेष प्रकार को ही छायावाद समझ लिया था। यहाँ हम कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे-

“उषा सुनहले तीर बरसती, जय लक्ष्मी सी उदित हुई ।

उधर पराजित काल-रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई ।

पगली, हाँ सम्हाल ले तेरा, छूट पडा कैसे अंचल ।

देख बिखरती मणिराजी, अरी उठा और बेसुध चंचल ॥

सिंधु सेज पर धरा वधु अब तनिक संकुचित बैठी सी ।

प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किए सी ऐंठी सी ॥”^(६)

“अरे, कौन तुम दमयंती सी हो तरू के नीचे सोई ।

हाय ! तुम्हें भी त्याग गया, क्या अलि नल-सा निष्ठुर कोई ॥” - पंत

“दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान् से उतर रही है ।

वह संध्या सुन्दरी परी सी,

धीरे, धीरे, धीरे ॥” - निराला

“नयन में जिनके जलद यह तुषिक चातक हूँ ।

शलम जिसके प्राण में वह निदुर दीपक हूँ ।

किसी शूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ ॥” - महादेवी वर्मा

“नील परिधान बीच सुकुमार, खिल रहा मृदुल अधखिला अंग ॥

खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ वन बीच गुलाबी रंग ।” - प्रसाद

यहाँ हम ओर अधिक उदाहरण न देकर इतना ही कहना चाहते हैं कि आधुनिक काव्य में प्रकृति और मानव दोनों एकाकार हो गये हैं। प्रकृति में मानव के तथा मानव में प्रकृति के रूप-वैभव का दर्शन सर्वत्र उपलब्ध होता है। प्रकृति आधुनिक कवियों का कथ्य है, कथन है और कथन का साधक है। ब्रह्म के विराट रूप का प्रतिपादन करना हो, या जीवन-दर्शन सम्बंधी किसी महत्वपूर्ण सिद्धान्त को समझाना हो अथवा अपने किसी गुप्त प्रेम के किसी गोपनीय तथ्य की व्यंजना करनी हो तो, हमारे काव्य-रचयिताओं ने प्रकृति को सहायता के लिए आमंत्रित किया है।

अंत में कहा जा सकता है कि हिन्दी कवियों के प्रकृति-प्रेम का इससे बढकर प्रमाण और क्या होगा कि उन्होंने प्रकृति के वैभव के समक्ष युवती बालाओं के मन-मोहक सौन्दर्य को टुकरा दिया और प्रकृति के क्रिया-कलापों के माध्यम से काव्य रचना कि है।

छोड़ दुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया ।

बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा हूँ लोचन ॥ - पंत

संदर्भ :

- | | | | | | |
|-----|------------------|---|---------------|---|--------------|
| (१) | बिहारी सतसई | - | बिहारी | - | पृष्ठ सं.१३९ |
| (२) | हिन्दी काव्यधारा | - | | - | पृष्ठ सं.३१८ |
| (३) | पदमावत | - | जायसी | - | पृष्ठ सं.९५ |
| (४) | सूरसागर | - | सूरदास | - | पृष्ठ सं.२०१ |
| (५) | बिहारी सतसई | - | बिहारी | - | पृष्ठ सं.१२९ |
| (६) | कामायनी | - | जयशंकर प्रसाद | - | पृष्ठ सं.११८ |